कुण्डलिया छंद के सात हस्ताक्षर

डा. जगदीश व्योम

कविता के लिये छन्द का अनुशासन आवश्यक माना गया है। छन्द ही कविता को गद्य से अलग पहचान देता है, परन्तु विगत वर्षों में किसी प्रकार के छन्द का पालन न करते हुए गद्यनुमा वक्तव्य को भी कविता कहा जाने लगा परिणामस्वरूप तमाम तथाकथित कवियों की बाढ़ सी आ गई। निराला जी ने कविता को छन्द से मुक्त करने की बात नहीं कही बल्कि छन्द को पारम्परिक बंधन से मुक्त करने की बात कही अर्थात कविता में छन्द तो रहे परन्तु वह मुक्त छन्द हो जिसका कवि अपने अनुसार निर्वहन करे साथ ही कविता में लय और प्रवाह भी रहे ताकि कविता कविता जैसी लगे। परन्तु परवर्ती रचनाकारों ने निराला के मुक्तछन्द को छन्दमुक्त मान लिया और गद्य को भी कविता कहने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि सुधी पाठकों का कविता से मोह भंग होने की स्थिति सी आ गई है।

छन्दयुक्त कविता पाठक को आकर्षित करती है और अपना एक प्रभाव छोड़ती है। दोहा, चौपाई, सोरठा, वरबै, सवैया, कवित्त, कुण्डलिया आदि छन्दों में लिखी न जाने कितनी कविताएँ आज भी पाठको को कण्ठस्थ हैं। लोक जीवन में तो आज भी कबीर के दोहे, तुलसी की चौपाइयाँ और गिरिधर की कुण्डलियाँ बात बात पर लोगों के लिये लोकशिक्षक की तरह उनके दैनिक जीवन में प्रचलित हैं।

कुण्डलिया लोक का अपना बहुत प्रिय छन्द रहा है, कवि गिरिधर ने लोक जीवन की तमाम बातें इस छन्द में कहकर इसे लोकप्रिय बनाया। किसानों के लिये तो गिरिधर की कुण्डलियाँ लोकवेद के समान हो गई थीं, चाहे वह बैलों की पहचान कराने की बात हो या खेत में बीज बोने, निराने, पानी देने, काटने की बात हो या फिर दैनिक जीवन में काम आने वाली छोटी-छोटी बातें हो कुण्डलियों के माध्यम से हर प्रश्न का उत्तर मिलता रहा है। यही कारण रहा कि कुण्डलिया बहुत लोकप्रिय हो गई।

दुर्भाग्य यह रहा कि कुण्डलिया जैसे लोकप्रिय छन्दों को कुचक्र रचकर तिलांजलि सी दे दी गई। यह सच है कि कविता अपने समय को साथ लेकर चलती है जिस कविता में समय को पहचानने की सामर्थ्य नहीं होती है वह कविता अतिशीघ्र कालकवलित हो जाती है। कुण्डलिया में यदि समसामयिक विषयों को कविता का विषय बनाया जा सके तो आज भी कुण्डलिया अपनी पुरानी लोकप्रियता को प्राप्त कर सकती है। यह एक चुनौती भरा कार्य है क्योंकि कुण्डलिया में प्रसादात्मकता होती है इसमें बहुत सहज और सरल ढँग से बात कही जाती है।

त्रिलोक सिंह ठकुरेला बहुत अच्छे नवगीत और हाइकु लिखते रहे हैं परन्तु इस मध्य उन्होंने कुण्डलिया छन्द को पूरी तरह साध लिया। 'कुण्डलिया छंद के सात हस्ताक्षर' पुस्तक का सम्पादन कर उन्होंने कुण्डलिया को पुनर्जीवित करने के दिशा में एक बड़ी पहल की है। मेरे संज्ञान में संभवतः कुण्डलिया कविताओं का यह पहला संकलन है जिसमें सात कवियों की 22-22 कुण्डलियों को सम्पादित कर प्रकाशित किया गया है। संकलन के कवियों ने समसामयिक विषयों को कुण्डलियों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

महँगाई से सब त्रस्त हैं, आम आदमी के लिये सामान्य जीवन जीना मुश्किल होता जा रहा है। आम आदमी की इस ज्वलन्त पीड़ा को डा. कपिल कुमार की इस कुण्डलिया में महसूस किया जा सकता है-

महँगाई की मार से, बचा न कुछ भी आज।
तेल, मसाले, सब्जियाँ, दालें और अनाज।।
दालें और अनाज, दूध, घी सभी सिसकते।
दुगने-तिगुने भाव, फलों को केवल चखते।
कहें 'कपिल' कविराय, अजब बीमारी आई।
मिलता नहीं निदान, नाम जिसका महँगाई।।
-डा. कपिल कुमार, (पृष्ठ-24)

भ्रष्टाचार से प्रत्येक व्यक्ति त्रस्त है परन्तु इसका कोई निदान निकट भविष्य में सूझ नहीं रहा है, यह एक भयानक कोढ़ है जो समाज में फैलता चला जा रहा है। 'गाफिल स्वामी' की यह कुण्डलिया समाज में परिव्याप्त भ्रष्टाचार त्रस्त एक आम आदमी की पीड़ा और विवशता को अभिव्यंजित कर रही है-

ऊपर वाला सो रहा, अपनी चादर ओढ़।
फैल रहा संसार में, भ्रष्टाचारी कोढ़।।
भ्रष्टाचारी कोढ, दुःखी है जनता सारी।
चाहे जग मर जाय, मौज में भ्रष्टाचारी।
कह गाफिल कविराय, भ्रष्ट का जीवन आला।
दीन दुःखी लाचार, सो रहा ऊपर वाला।।
-गाफिल स्वामी, (पृष्ठ-36)

पर्यावरण संतुलित रहे इसके लिये वनों का संरक्षण आवश्यक है परन्तु मनुष्य बिना सोचे समझे जंगलों को अंधाधुंध काटता जा रहा है और पर्यावरण को भारी नुकसान पहुँचा रहा है। डा. जगन्नाथ प्रसाद बघेल की इस कुण्डलिया में जंगलों के विनाश की इसी त्रासदी को देखा जा सकता है-

जंगल हैं कंक्रीट के, शहर हमारे आज।
हुआ जंगली जीव सा, सारा सभ्य समाज।।
सारा सभ्य समाज, मात्र सम्पति का भूखा।
कुल तक सीमित नेह, रहा संवेदन सूखा।
कह 'बघेल' कविराय, सभी के स्वार्थ प्रबल हैं।
चरागाह की तरह, शहर धन के जंगल हैं ।।
-डा. जगन्नाथ प्रसाद बघेल, (पृष्ठ-46)

शहरों को गाँवों में पहुँचने का सपना स्वतंत्रता से पहले देखा गया था परन्तु आज हम देख रहे हैं कि शहर तो गाँवों में नहीं पहुँच सके बल्कि गाँव शहरों में पहुँचने लगे हैं साथ ही गाँव का गाँवपन भी कहीं गुम होने लगा है। गाँवों में पनपती लोक संस्कृति, लोकभाषा, लोकगीत, लोकगाथाएँ, लोक कहावतें, लोकमुहावरे आदि सभी के विलुप्त होने का खतरा बढ़ गया है। गाँव का सहज भोलापन, रीतिरिवाज, लोकाचार, पारिवारिक अनुशासन आदि सब खोजने पर भी नहीं मिलते हैं, यह सब परिवर्तन शहरों की चकाचौंध के कारण हुआ है। अपने लोकसंस्कारों और लोकसंस्कृति से निरन्तर दूर होते जाना हमारे लिये एक आत्मघाती कदम है। डा. रामसनेही लाल शर्मा यायावर की यह कुण्डलिया लोक के छीजने की इसी वेदना को व्यक्त कर रही है-

भूख शहर की बढ़ गयी, सब कुछ लेता खाय।
खेत, गाँव पगडण्डियाँ, भैंस, बैल औ गाय।।
भैंस, बैल औ गाय, खिलखिलाहट पनघट की।
दादा की फटकार, हँसी भोले नटखट की ।
नेम, क्षेम, उल्लास, प्रीति छीनी घर घर की ।
चितवन घूँघट छीन, खा गयी भूख शहर की ।।
-डा. रामसनेही लाल शर्मा यायावर, (पृष्ठ-56)

आज के बच्चे ही कल का भविष्य होते हैं, जिस देश के बच्चों की ठीक से परवरिश नहीं होती एवं बच्चों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं होती, उस देश का भविष्य कभी अच्छा नहीं हो सकता। हमारे यहाँ बच्चों की शिक्षा पर यूँ तो ध्यान दिया जा रहा है, तमाम योजनाएँ बनाई गयीं हैं फिर भी जिस तरह की शिक्षा बच्चों के लिये होनी चाहिये वह देखने को नहीं मिल रही है। कचरे के ढेर में से बचपन तलाशते बच्चे किसी भी शहर और कस्वों में प्रायः दिख जाते हैं, हमारी व्यवस्था पर यह एक बड़ा प्रश्न चिह्न है। शिवकुमार दीपक की इस कुण्डलिया में यही पीड़ा उभर कर सामने आयी है-

बाल दिवस पर शहर में, सपने मिले उदास।
कचरा वाले ढेर पर, जीवन रहे तलाश।।
जीवन रहे तलाश, नहीं शिक्षा मिल पाती।
बढ़ा उदर भूगोल, पेट की आग भगाती।
कह 'दीपक' कविराय, पढ़ाई नहीं मयस्सर।
भोजन रहे तलाश, बाल कुछ बाल-दिवस पर।।
-शिव कुमार दीपक, (पृष्ठ-68)

मानव जीवन के लिये वृक्षों का बहुत बड़ा योगदान है, यदि पृथ्वी पर वृक्ष न होते तो मानव जीवन संभव ही नहीं हो पाता, इसलिये वृक्षों को ईष्वरीय वरदान भी माना गया है। सुभाष मित्तल सत्यम ने वृक्षों के द्वारा की जाने वाली प्राणियों की सेवा को प्रस्तुत कुण्डलिया में व्यक्त किया है-

परम पिता की कृपा का, वृक्ष रूप साकार ।
सभी प्राणियों के लिये, जीवन का आधार ।।
जीवन का आधार, नमी कर घन बरसाते ।
वर्षा-जल गति रोक, भूमि जल सतह बढ़ाते।
भूमि अपरदन रोक, वृद्धि मृद-उर्वरता की।
'सत्यम' सचमुच वृक्ष, कृपा है परम पिता की ।।
-सुभाष मित्तल सत्यम, (पृष्ठ-77)

त्रिलोक सिंह ठकुरेला अपनी कविताओं में सकारात्मक पक्ष को प्रस्तुत करते हैं, उनके नवगीत हों या हाइकु, सभी में वे अपने कथ्य को प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत करते हैं। कविता का उद्देष्य भी यही है कि पाठक को प्रगति की दिशा में बढ़ने की प्रेरणा दे। सफलता और असफलता तो एक दूसरे की पूरक हैं, असफलता ही सफलता का मार्ग प्रशस्त करती है, इसलिये असफलता से कभी निराश नहीं होना चाहिए, मंजिल उन्हें ही मिल पाती है जो जीत हार की चिन्ता न करते हुए, बाधाओं का बहादुरी से सामना करते हैं और निरंतर आगे बढ़ते रहते हैं। त्रिलोक सिंह ठकुरेला ने अपनी इस कुण्डलिया में कर्म पथ पर चलते रहने की यही प्रेरणा दी है-

असफलता को देखकर, रोक न देना काम।
मंजिल उनको ही मिली, जो चलते अविराम।।
जो चलते अविराम, न बाधाओं से डरते।
असफलता को देख, जोश दूना मन भरते।
'ठकुरेला' कविराय, समय टेड़ा भी टलता।
मत बैठो मन मार, अगर आये असफलता।।
-त्रिलोक सिंह ठकुरेला, (पृष्ठ-96)

कुण्डलिया के इस अप्रतिम संकलन में सात कवियों की 154 कुण्डलियाँ हैं जो कि विविध विषयों को प्रस्तुत करती हैं। छन्द की दृष्टि से सभी कुण्डलियाँ ठीक हैं। सभी कवि अपने अपने क्षेत्र के प्रतिष्ठित रचनाकार हैं। इस संकलन के सम्पादक त्रिलोक सिंह ठकुरेला ने कुण्डलिया संकलन का सम्पादन करके एक ऐतिहासिक कार्य किया है। उनका यह कार्य छान्दस कविताओं को पुनः उनका स्थान दिलाने की दिशा में संघर्ष कर रहे रचनाकारों के महायज्ञ में एक बड़ी आहुति के समान है। इस संकलन से प्रेरणा लेकर कुछ अन्य कुण्डलिया संकलन तथा कुण्डलिया संग्रह प्रकाश में आयेंगे एवं जो कवि कुण्डलिया तथा अन्य समसामयिक छान्दस कविताओं को लिखकर अपनी डायरी तक ही सीमित रख रहे हैं वे भी अपनी उन कविताओं को प्रकाशित कराने का साहस कर सकेंगे। कुण्डलिया छन्द में यदि वर्तमान सन्दर्भों को प्रस्तुत किया जा सके तो निष्चय ही कुण्डलिया को अपनी खोई हुई लोकप्रियता प्राप्त करने से कोई नहीं रोक सकता।

पुस्तक का मुद्रण, आवरण, रचना चयन सब कुछ उत्तम है। राजस्थानी ग्रंथागार से प्रकाशित 96 पृष्ठ की पक्की जिल्द वाली इस पुस्तक की कीमत 150 रुपए है जो उचित ही है। इस पुस्तक का छन्द प्रेमी पाठक स्वागत करेंगे।

- डा. जगदीश व्योम

कुण्डलिया छंद के सात हस्ताक्षर

: सम्पादक :

त्रिलोक सिंह ठकुरेला

कुण्डलिया छंद के सात हस्ताक्षर :: सं.: त्रिलोक सिंह ठकुरेला

 ISSN:2583-8849